वर्ष 11, अंक 39,अक्तुबर-दिसंबर 2021

मूल्य
₹ 150/-

UGC Care Listed
त्रैमासिक साहित्यिक पत्रिका
ISSN-2321-1504 Nagfani RNI No.UTTHIN/2010/34408

आज़ादी का
अमृत महोत्सव

नागफनी

अस्मिता,चेतना और स्वाभिमान जगाने वाला साहित्य

अतिथि संपादक- प्रो. आर. जयचंद्रन

UGC Care Listed त्रैमासिक साहित्यिक पत्रिका ISSN-2321-1504 Nagfani RNI No.UTTHIN/2010/34408

संपादक
सपना सोनकर

सह-संपादक
रूपनारायण सोनकर

कार्यकारी संपादक
डॉ. एन. पी. प्रजापति
प्रोफेसर बलिराम धापसे

अतिथि संपादक
प्रोफेसर आर. जयचंद्रन

नागफनी

A Peer Reviewed Referred Journal

(अस्मिता, चेतना और स्वाभिमान जगाने वाला साहित्य)

UGC Care Listed त्रैमासिक साहित्यिक पत्रिका
ISSN-2321-1504 Naagfani RNI No. UTTHIN/2010/34408

वर्ष 11, अंक 39,अक्तुबर-दिसंबर 2021

सलाहकार मंडल (Peer Review Committee)

प्रोफेसर विष्णु सरवदे, हैदराबाद (तेलंगाना)
प्रोफेसर किशोरी लाल रैगर, जोधपुर (राजस्थान)
प्रोफेसर आर.जयचंद्रन तिरूअनंतपुरम (केरल)
प्रोफेसर दिनेश कुशवाह, रीवा (मध्यप्रदेश)
डॉ. एन. एस. परमार, बड़ोदा (गुजरात)
डॉ. दिलीप कुमार मेहरा, बी.बी. नगर (गुजरात)
प्रोफेसर विजय कुमार रोड़े, पुणे (महाराष्ट्र)
प्रोफेसर संजय एल. मादार, धारवाड (कर्नाटक)
प्रोफेसर गोबिन्द बुरसे, औरंगाबाद (महाराष्ट्र)
डॉ. दादासाहेब सालुंके, महाराष्ट्र (औरंगाबाद)
प्रोफेसर अलका गड़करी, औरंगाबाद (महाराष्ट्र)
डॉ. साहिरा बानो बी. बोरगल, हैदराबाद (तेलंगाना)
डॉ. बलविंदर कौर, हैदराबाद (तेलंगाना)
डॉ. उमाकांत हजारिका, शिवसागर, असम

मुख पृष्ठ- सुरेश मौर्या, ग्राफिक डिजाइनर, बैढ़न-सिंगरौली (म.प्र.)

प्रकाशन/मद्रण

प्रकाशक रूपनारायण सोनकर की अनुमति से डॉ. एन. पी. प्रजापति एवं प्रोफेसर बलिराम धापसे द्वारा
नमन प्रकाशन 423/A अंसारी रोड दरियागंज, नई दिल्ली 11002 में प्रकाशन एवं मुद्रण कार्य

संपादकीय / व्यवस्थापकीय कार्यालय

दून व्यू काटेज स्प्रिंग रोड, मसूरी-248179, उत्तराखण्ड दूरभाष: 0135-6457809 मो. 09410778718

शाखा कार्यालय

पी.डब्ल्यू. डी.आर-62 ए, ब्लाक कालोनी बैढ़न, जिला-सिंगरौली म.प्र. 486886, मो. 097529964467

सहयोग राशि-150/- रुपये, वार्षिक सदस्यता शुल्क (संस्था के लिए)-1000, रुपये पंचवार्षिक सदस्यता शुल्क (व्यक्ति के लिए)-2000/- रुपये
पंचवार्षिक संस्था और पुस्तकालयों के लिए 3000/- रूपये, विदेशों में $50 आजीवन व्यक्ति 6000/- रुपये 10000/- रुपये

सदस्यता शुल्क एवं सहयोग राशि-इंडिया पोस्ट पेमेंट बैंक AC8367100138282 IFSC Code-IPOS0000001,Branch -SIDHI(NIRAT Prasad Prajapati)

नोट:- पत्रिका की किसी भी सामग्री का उपयोग करने से पहले संपादक की अनुमति आवश्यक है। संपादक - संचालक पूर्णतय: अवैतनिक एवं अध्यावसायिक है। **नागफनी'** में प्रकाशित शोध-पत्र एवं लेख, लेखकों के विचार उनके स्वंय के हैं, जिनमें संपादक की सहमति अनिवार्य नहीं। **"नागफनी"** से संबंधित सभी विवादास्पद मामले केवल देहरादून न्यायालय के अधीन होंगे। अंक में प्रकाशित सामग्री के पुनर्प्रकाशन के लिए लिखित अनुमति अनिवार्य है। सारे भुगतान मनीआर्ड बैंक/चेक/ बैंक ट्रांसफर /ई-पेमेन्ट आदि से किये जा सकते हैं। देहरादून से बाहर के चेक में बैंक कमीशन 50/- अतिरिक्त जोड़ दें।

लेख भेजने के लिए Mail ID: nagfani81@gmail.com Website: http:naagfani.com

नागफनी

अनुक्रम

	पृष्ठ क्रमांक
संपादकीय.....	01
आजादी का अमृत महोत्सव	
1. आजादी का अमृत महोत्सव और श्रमिक उद्घाटक : डॉ.बाबासाहेब अम्बेडकर - डॉ.नितीन कुंभार	02-03
2. आजादी के आंदोलन में हिन्दी का योगदान - मार्सेल लूविस मस्करेन्हस	04-05
3. कोयम्बतूर के स्वतंत्रता सेनानी-डॉ.जी शांति	06-07
4. भारत की आजादी और हिन्दी साहित्य : डॉ.बालेन्द्र सिंह यादव	08-13
5. राष्ट्रोत्थान में साहित्य का योगदान-डॉ. आर नागेश	14-15
6. स्वतंत्रता संग्राम और निराला की कविता -डॉ.जस्टी एम्मानुवल	16-17
7. हिंदी उपन्यासों में चित्रित स्वतंत्रता आंदोलन और आदिवासी -डॉ.संजय नाईनवाड	18-21
8. बंगाल नवजागरण का भारत के विभिन्न प्रांतों पर प्रभाव- डॉ.अपराजिता जॉय नंदी	22-25
9. स्वतंत्रता आंदोलन में पत्रकारिता का योगदान-डॉ. रेखा अग्रवाल	26-27
10. राम की शक्तिपूजा-स्वाधीनता के अमृत महोत्सव के संदर्भ में -डॉ. विजय गाडे	28-30
11. भारत के स्वतंत्रता संग्राम में छायावादी कवियों का योगदान - डॉ.वीरेश कुमार	31-32
12. 1857 की क्रान्ति : हाशिए के समाज की स्त्रियों की भूमिका -नित्यानन्द सागर	33-35
13. काका कालेलकर जी की वैचारिक दृष्टि -डॉ.बाबासाहेब माने	36-38
14. 'जिस लाहौर नइ देख्या ओ जम्याइ नइ' नाटक में अभिव्यक्त हिंदू-मुस्लिम एकता- दीपक वरक/ प्रो.वृषाली मांद्रेकर	39-41
15. महिला रचनाकारों के बाल एकांकियों में अभिव्यक्त राष्ट्रीयता-डॉ.शितल गायकवाड	42-43
16. भारतीय साहित्य में संस्कृति एवं लोकजीवन की अभिव्यक्ति-डॉ.नवनाथ गाडेकर	44-45
17. 'गौरी' कहानी में देशभक्ति- डॉ.वसंत माळी	46-47
18. दिनकर के काव्य में राष्ट्रीय भावना का स्वर - डॉ.अन्सा ए.	48-50
19. भारत विभाजन की त्रासदी एवं दलित विमर्श-सुकांत सुमन	51-54
20. आजादी पूर्व भारतीय नारी की दशा और दिशा-डॉ. जयश्री ओ	55-56
21. आचार्य विनोबा भावे के शैक्षणिक विचारों की वर्तमान में प्रासंगिकता-प्रो.मनीषा वर्मा	57-59
22.आधुनिक भारत के निर्माता : डॉ.बाबासाहब अम्बेडकर-डॉ.मनोहर भंडारे	60-62
23. महात्मा गांधी के आर्थिक विचारों की प्रासंगिकता-डॉ.जीतेन्द्र कुमार डेहरिया	63-64
24. राष्ट्रभाषा हिन्दी के विकास में गाँधीजी का योगदान -डॉ.धर्मराज पवार	65-68
25. ऐतिहासिक विचार और स्वतंत्र भारत के प्रथम प्रधानमंत्री-मोनी	69-70
कविता	
1. कविताएँ- सार्जेंट अभिमन्य पाण्डेय 'मन्नू'	71-72
2. मुझे कुछ करके जाना है- समीर उपाध्याय	73
3. कविताएँ - लाल देवेन्द्र कुमार श्रीवास्तव	73-77

हिंदी उपन्यासों में चित्रित स्वतंत्रता आंदोलन और आदिवासी

-डॉ. संजय नाईनवाड
सहयोगी प्राध्यापक, हिंदी,
एस.बी. झाडबुके महाविद्यालय, बार्शी, जि. सोलापुर

भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन की शुरूआत 1857 के सैनिक विद्रोह से मानी जाती है। किंतु यह आंदोलन आदिवासी इलाकों में इससे पहले शुरू हुआ था। पूर्वोत्तयर भारत, मध्य भारत, उत्तर भारत व दक्षीण भारत इन सभी इलाकों में बसे आदिवासियों ने भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन में अपना योगदान दिया है। आदिवासी स्वितंत्रता आंदोलनों की लंबी परंपरा रही है। जिनमें – ''पहाड़िया विद्रोह (1766), चुआड़ विद्रोह (1769), ढाल विद्रोह (1773), तिलका मांझी का विद्रोह (1784), तमाड़ विद्रोह (1819-20), लरका विद्रोह (1821), कोल विद्रोह (1831-32), भूमिज विद्रोह (1832-33), सरदार आंदोलन (1860-1895), भील विद्रोह (1881), बिरसा मुंडा का 'उलगुलान' (1895-1900), बस्तंर क्रांति 'भूमकाल' (1910), भील आंदोलन 'धूमाल (1913), ताना भगत आंदोलन (1914), भील-गरासिया 'एकी' आंदोलन (1922), नागा संघर्ष जेलियांगरांग आंदोलन (1932), संथाल विद्रोह (1917, 1932) और वारली संघर्ष (1945-48)[1]'' मुख्य हैं। इतिहास की पुस्तकों में इस पर विस्तार से लिखा नहीं गया है। इस कमी को आदिवासी जीवन पर लिखे जा रहे उपन्यास पुरा कर रहे हैं।

झारखंड में सिदो, कान्हो, चाँद और भैरो के नेतृत्व में चली संथाल क्रांति अंग्रेजों को देश से खदेड़ने की पहली जनसंगठित क्रांति के रूप में जानी जाती है। संताल क्रांति का चित्रण मधुकर सिंह ने 'बाजत अनहद ढोल' उपन्याहस में किया है। उपन्यास में वर्णन है कि ईस्ट इंडिया कंपनी ने मुगल शासन नेस्तनाबूत कर देश की बागडौर हाथ में लेकर जमींदारी प्रथा शुरू कर लगान वसूली शुरू की। उस दौर में संथाल इलाके में कंपनी के नील व्यापारियों द्वारा किसानों से नील खेती करने के इकरारनामें जबरदस्ती लिखवा लेना, आदिवासियों को भूमि से बेदखल करना, सरकार के कारिंदो द्वारा आदिवासियों पर अन्याय-अत्याचार किये जाना, जैसे मामले घटित हो रहे थे। उपर से ब्रिटिशों ने 'फूट डालो और राज करो' नीति अपनाते हुए चूनिंदा लोगों को जमींदार बनाकर अपने अधीन करते थे। ये लोग अंग्रेजों के इशारे पर आदिवासियों पर अन्याय-अत्याचार करते थे। ब्रिटिश राज विरोधी आदिवासियों को गिरफ्तार कर यातनाएँ दी जाती थीं। बावजूद विद्रोह व स्वाधीनता की भावना भीतर ही भीतर सुप्त रूप में धधकने लगी थी। आदिवासियों की स्वाधीनता की चेतना का अंदाजा इस बात से लगाया जा सकता है कि संताल इलाके में वीरसिंह माँझी ने नये गाँव को बसाकर उसे 'आज़ाद गाँव' नाम दिया था। भोगनाड़ीह निवासी चुन्नु माँझी के लड़कों - सिदो, कान्हो, चाँद और भैरो ने इलाके के आदिवासियों तथा गैर आदिवासियों को देश की आज़ादी के लिए एकजुट किया था। अंग्रेजों को आधुनिक बंदूकें, तोप, लंबी चौडी फौजें, दलाल महाजन और जमींदारों का साथ था किंतु आदिवासियों का विश्वास था, "हमारा तीर-धनुष उनके तोप-बंदूक से भी बलवान है। वीरसिंह, सूकेल, सिदो-कान्हो गाँव-गाँव में जन्म ले चुके हैं। एक सिदो के बदले एक सौ सिदो रोज जन्म ले रहे हैं।"[2] संतालों ने भोगनाडीह में सभा आयोजित करके सिदो को संताल राजा और कान्हु को सलाहकार, चाँद को प्रशासक और भैरो को सेनापति बनाया। सिदो ने संतालों से अपील की "तुम संताल-राज कायम करो। कंपनी राज को खत्म करो। अंग्रेजों, ठेकेदारों, नीलहों और उन देशद्रोहियों से बदला लो, जो अंग्रेजी सल्तनत कायम रखने में अंग्रेजों के मददगार हैं। राजस्व तुम स्वयं वसूलो, भैसों के हल पर दो आने और बैलों के हल पर एक आना सालाना कर वसूल करो। अगर कोई महाजन या दरोगा इस कानून का विरोध करें तो वह देश का दुश्मन समझा जाए और देश के लिए उसका वध कर दिया जाए।"[3]

सिदो ने बीस हजार आदिवासी सैनिकों को संगठित कर अंबर परगने पर धावा बोला और परगने पर कब्जा किया। सैनिकों के उत्साह को बढ़ाते हुए सिदो ने कहा था, "मेरे प्यारे सेनापतियों हममें और अंग्रेज फौजों में आकाश-जमीन का फर्क है। हमें सुराज चाहिए-स्वाधीन मातृभूमि। संथाल परगने का बच्चा-बच्चा हमारा सिपाही है। लड़ाकू हथियार है। मरता भी है तो आज़ादी के लिए। इसके भीतर कहीं गुलाम मानुष नहीं। एक अंग्रेज फौजी के बराबर एक संताल सुराजी सवा लाख फौजियों के समान है। वे सभी भाड़े के हैं, कंपनी के नौकर-गुलाम हैं। इन भाड़े के टट्टुओं में कोई देशप्रेम नहीं होता। उनमें मृत्यु का डर बराबर रहता है, हमारे भीतर मृत्यु जैसी कोई चीज नहीं होती।"[4] संथालों ने क्रूर अंग्रेज अधिकारी, जमींदार व महाजनों का वध करना शुरू किया। सिदो के नेतृत्व में विजय पताका फहराती फौज पाकुड़ पहुँची। पाकुड़, अंग्रेजों का केंद्र था। यहाँ अंग्रेज अधिकारियों एवं रेल पदाधिकारियों के लिए सरकार ने विशालकाय 'मारटेल टावर' बनाया था। पाकुड़ में जब सुराजियों ने इन्हें चारों ओर से घेरा तो फौजों ने भागकर इसी टावर में अपनी प्राण रक्षा की थी। अंग्रेजों ने टावर से अंधाधूंध गोलियाँ दागकर कई सुराजियों को शहीद किया। आज भी मारटेल टावर भारत में स्वाधीनता की पहली लड़ाई की गाथाएँ सुनाता खड़ा है। अगली कार्यवाही में आदिवासी वीरों ने वीरभूम पर कब्जा किया। इसमें कान्हो की शहादत हुई। यहीं पर विद्रोहियों ने कंपनी राज का खात्मा और स्वाधीन संताल-राज स्थापित होने की घोषणा की थी।

भागलपुर कमिश्नर ने संतालों की घोषणा से क्रुद्ध होकर लार्ड डलहौजी से मार्शल लॉ जारी कर संताल अंचल फौजों के हाथ में सौंपने का अनुरोध किया। कमिश्नर ने विद्रोही नेताओं की गिरफ्तारी के लिए पुरस्कारों की घोषणा करके विद्रोहियों को देखेते ही गोलियाँ दागने का आदेश भी जारी किया। कई आदिवासी नेताओं की गिरफ्तारियाँ हुई। ब्रिटिश सेना संथाल गाँवों को जलाती और कत्लेआम करती आगे बढ़ रही थी। बावजूद इसके

आदिवासियों ने छापामार पद्धति अपना कर वीरभूम के शेष हिस्से पर कब्जा करके गुणपुर लेफ्टीनेंट का वध किया। भयभीत मेजर बरोज ने भागलपुर कमिश्नर को चिट्ठी भेजी जिसकी इबारत थी, "हमें खबर मिली है कि विद्रोही छोटे-छोटे दलों में बँटकर चलते हैं। मगर मादल की आवाज सुनते ही विद्रोही दस-दस हजार के दलों में लूट-मार के लिए इकट्ठा हो जाते हैं। मेरे अधीन सेना इतनी छोटी है कि अगर और भी दस्तों में बाँटा जाय तो उसमें युद्ध करने की क्षमता नहीं रहेगी।"[5] सरकार ने विचार-विमर्श के बाद घोषणा की - यदि संथाल आत्मसमर्पण कर दें तो उनके नेताओं को छोड़कर माफी दी जाएगी। यहीं नहीं पूर्ण शांति के बाद उनकी शिकायतों पर सरकार विचार करेगी। इसके बाद भी वे आत्मसमर्पण नहीं करते हैं तो उन्हें अत्यंत कठोर दंड दिया जाएगा। संताल नहीं माने। कई संताल नेताओं की गिरफ्तारियाँ हुई। कइयों को फाँसी हुई। बुढे, बच्चों, महिलाओं को कत्ल कर बस्तियाँ वीरान कर दी गयी। दमन और युद्ध के सामने विद्रोही पीछे हटते गए। चाँद और भौरव भागलपुर लड़ाई में शहीद हुए। भागलपुर पराजय से सिदो टूटते गये। अंग्रेज, आत्मसमर्पण की प्रतीक्षा करते रहें। किंतु आदिवासियों ने लड़कर वीरगति को प्राप्त होना बेहतर समझा, आत्मसमर्पण नहीं। अंग्रेजों ने विद्रोहियों की धर-पकड़ शुरू की। दो सौ इक्यावन लोगों पर केस चला। बच्चों को बेंत लगाने की और बडों को चौदह साल तक की सजा मिली। सिदो को फाँसी दी गयी। अंग्रेजों को लगा-अब विद्रोह थम जाएगा किंतु सिदो ने संथालों में जगायी चेतना कहाँ बुझनेवाली थी। सिदो के बाद आज़ादी की जंग सुकेल, तुरिया, किरता, सुन्नो माझी और गोको नायक के नेतृत्व में जारी रखी गयी। संथालों ने मरते दम तक अंग्रेजी सत्ता का विरोध करते हुए देश से उन्हें खदेड़ देने की ठान ली थी। फिर से आदिवासी परंपरागत हथियारों से लौस होकर लड़ने के लिए निकल पडे। अंतत: हुकूमत ने संथाल इलाके में 14 नवंबर, 1855 को मार्शल लॉ लागू करके 25 हजार से भी ज्यादा फौज बिछा दी। इसीके बल पर बड़ी ही निर्ममता से संथाल स्वतंत्रता आंदोलन को दबाया।

हरिराम मीणा द्वारा लिखा 'धूणी तपे तीर' उपन्यास भील आदिवासियों द्वारा चलाए गए स्वजतंत्रता आंदोलन पर लिखा है। भीलों का स्वतंत्रता आंदोलन गोविंद गुरू के नेतृत्व में दक्षिणी राजस्थान की रियासतें एवं गुजरात की संतरामपुर रियासत में चलाया गया था। यह वह दौर था जब ब्रिटिश सत्ता नये-नये कानून बनाकर हस्तक्षेप की रणनीति तैयार कर रही थी ताकि देसी रियासतों में उनकी पकड मजबूत बने। अंग्रेज व रियासती शासक आदिवासियों को अलग-अलग जातियों, गोत्र, पाल व खाप के नाम से संबोधित करके फूट डाल रहे थे। कुरिया भगत इस षडयंत्र से आदिवासियों को जाग्रत करते हुए कहता है, "ये सब बातें हमको बाँटने के लिए फैलायी जा रही हैं। हमारे पुरखे एकजूट होकर अपने हकों के लिए लड़ते थे और जीते थे। तुम्हें पता नहीं कि इस पूरे आदिवासी इलाके में पुराने जमाने में हमारे राजा महाराजा हुआ करते थे। कोई दूसरा हम पर राज नहीं कर सकता था...डूंगर भील ने डूंगरपुर बसाया था। बाँस्या भील ने बांसवाड़ा। इसी तरह बूँदा मीणा के नाम पर बूँदी और कोट्या भील के नाम पर कोटा शहर बसे। इन परदेसी फिरंगियों ने हमारे राज छीने हैं। और हमारे इलाकों पर राज कर रहे हैं। फिरंगियों को रजवाड़े ही बुलाकर लाये हैं और अब दोनों मिलकर हमारा खून चूस रहे हैं।"[6]

गोविंद गुरू ने फिरंगी एवं देसी शासकों के दमनचक्र के खिलाफ 'सम्प सभा' गठित कर आदिवासियों को एकजूट करके मानगढ़ को स्वतंत्रता आंदोलन का केंद्र बनाया था। सम्प सभा के कार्य से ब्रिटिश और रियासतें आग बबूला हो उठीं। हुकूमत ने गुरू के जाग्रृति कार्य को राजविरोधी करार देकर उन्हें देश निकाला दिया। "गोविंद गुरू वागड़ प्रदेश को ही जंबूखंड मानते थे। फिरंगियों को वे अपना असली दुश्मन मानते थे। चूँकि उन्हीं के कारण देसी राजाओं ने आदिवासी विरोधी नीतियाँ लागू की थीं। अंग्रेजी सत्ता केंद्र दिल्ली था.....गोविंद गुरू का लक्ष्य दिल्ली की गद्दी था। अर्थात् अंग्रेज राज का खात्मा।"[7] रियासती इलाकों में आर-पार की लड़ाई के लिए मानगढ़ पर इकट्ठा होने का संदेश आदिवासियों तक पहुँचाया गया। रियासती शासकों ने गोविंद गुरू की हरकत आदिवासी राज की स्थापना का पूर्व संकेत मानी। सरकार ने संभवित विद्रोह दबाने के लिए गोविंद गुरू की गिरफ्तारी का फैसला किया। इस कार्रवाई को 'ऑपरेश मानगढ़' कहा गया। इसका नेतृत्व मेजर स्टोकले ने किया था। स्टोकले ने मानगढ़ पर आदिवासियों की बड़ी तादाद और सीधे टकराव का मनसूबा देख गोविंद गुरू से बातचीत के द्वारा सुलह की कोशिश के उद्देश्य से संदेश भेजा कि "अगर गोविंद गुरू मानगढ़ खाली कर दें तो कोई फौजी कार्रवाई नहीं की जायेगी...।"[8] जवाब में गोविंद गुरू ने वार्ता हेतु शिष्टमंडल के जरिए स्पष्ट कहा - जब तक तमाम माँगे पूरी नहीं होती तब तक आदिवासी मानगढ़ नहीं छोडेंगे। सेना अधिकारियों ने शिष्टमंडल के जरिए प्रति संदेश भेजा - आदिवासियों का यह रवैया अडियल किस्म का है। भारी संख्या में आदिवासियों का एकत्रित होना समर्थनीय नहीं है। यह राजद्रोह है। मानगढ़ पर्वत खाली नहीं किया गया तो तमाम विरोधियों को कत्ल कर दिया जाएगा।

मेजर वेली ने सेना अधिकारियों संग कार्यवाही के दौरान अपनायी जानेवाली रणनीति पर चर्चा की। इसके तहत वेली ने 17 नवंबर, 1913 को 104 वेल्सले रायफ्ल्स की एक कंपनी, मेवाड़ कोर की दो कंपनियाँ, पंचमहल पुलिस अधिक्षक के नेतृत्व में 40 सशस्त्र जवानों की टुकडी, बारिया के ठाकुर के नेतृत्व में घुड़सवार दस्ता, संथ राज्य पुलिस, मेवाड़ घुडसवार पलटन, डुंगरपुर फौज एवं मेवाड़ भील कोर की मदद से मानगढ़ की घेराबंदी की। गोविंद गुरू व आदिवासी बेखबर थे। वे यही मानकर चल रहे थे - फौजों का डेरा अंबादरा गाँव में ही है पर सच्चाई भयावह थी। स्टोकले ने स्थिति का जायला लेते हुए पाया कि लगभग 25 से 30 हजार की आदिवासी भीड़ इकट्ठा है। वे कोई उत्पाती कदम उठाए इसके पूर्व ही उसने सेना को हमले का आदेश दिया, फायर!' तड़-तड़....तड़ातड़....तडातड़....फायर!!' तड़तड़.... तडातड़.... तडा़तड़.... मशिन गनें व रायफलें गोलियों की बौछारें उगल रही थी। दूसरी तरफ मोर्चाबंद

आदिवासी एक के बाद एक ढेर होने लगे। शिलाखंड़ों की सुरक्षित ओट से उन पर अंग्रेज फौजों द्वारा सीधी गोलियाँ दागी जा रही थी।"[9] फौजों द्वारा चुहओर से घेरकर दागी जा रही गोलियों की बौछारों से आदिवासी वीरों के बदन एक के बाद एक छलनी हो रहे थे। खून से लथपथ मृत शरीरों से मानगढ़ पटने लगा। मंजर भयानक से भयानक बनता गया। स्टोकले ने महिलाएँ, छोटे बच्चे और बुढ़ों को तक नहीं छोडा। उसने निर्ममता से गोलियाँ चलाने का आदेश दिया था। नतीजा हार ही है यह जानते हुए भी बहादुर आदिवासी मौत हथेली पर रख परंपरागत हथियारों के सहारे साम्राज्यवादी सामंती ताकतों की विकसित बंदूकों एवं अग्नेयास्त्रों से भीड़े। और अंतिम साँस तक लड़कर अतुलनीय शौर्य का परिचय दिया। इस लड़ाई में लगभग डेढ़ हजार वीर शहीद हुए। आदिवासी नायकों गोविंद गुरू, पूंजा भगत एवं अन्य नौ सौ क्रांतिकारियों की गिरफ्तारियाँ हुई। मानगढ़ नरसंहार के लिए गोविंद गुरू को जिम्मेदार मानकर आजीवन कारावास सुनाया गया। जिसे बाद में संभवित विद्रोह की आशंका से देश निकाला में परिवर्तित कर दिया। गुजरात के रेवाकांठा एवं पंचमहाल इलाके की नायकदास जनजाति में जन्मे जोरिया भगत ने बेगार, जंगलों से आदिवासियों के परंपरागत अधिकार को खत्म कर देने और लगान के मुद्दे पर अंग्रेजों से बगावत की। हुकूमत के खिलाफ जोरिया भगत ने तमाम आदिवासियों को संगठित किया। 1818 से 1848 के बीच अंग्रेज एवं रियासतों के बीच हुई संधियों के चलते गुजरात रियासती इलाके अप्रत्यक्ष रूप से अंग्रेजों के अधीन हो गए थे। 1857 के बाद यह सारा इलाका प्रत्यक्ष ब्रिटिशों के अधीन आ गया किंतु जोरिया की बगावत ब्रिटिशों के लिए अब भी चुनौती थी। जोरिया के नेतृत्व में पनपते विद्रोह को दबाने के लिए जो भी फौजी कार्यवाही होती उसका केंद्र राजगढ़ पुलिस थाना हुआ करता था। राजगढ़ पर जोरिया ने बागियों की सहायता से धावा बोला और वहाँ के थाना अफसर की गर्दन काटकर थाने पर कब्जा किया। वहाँ से विद्रोहियों का जत्था जंबूगोड़ा की ओर रवाना हुआ। सूचना मिलने पर विद्रोह को कुचलने के लिए कंपनी ने फौज रवाना की। जंबूगोड़ा के जंगलों में परंपरागत हथियारों से लैस आदिवासियों ने बहादुरी से ब्रिटिशों से लोहा लिया। लेकिन फौजों की बंदूकों व मशीनगनों से तड़ातड़ निकलनेवाली गोलियों के सामने मुकाबला संभव नहीं था। जोरिया ने आमने-सामने की लड़ाई टालकर छापामार पद्धति से युद्ध का विचार किया। पीछे हटते सुरक्षित स्थल की खोज में निकले विद्रोही ऐसे स्थान पर पहुँचे जहाँ पानी भरा था। वहाँ से निकलना मुश्किल हुआ। अवसर का लाभ उठाकर फौजों ने अंधाधुंध गोलियाँ दागी। सैंकड़ों आदिवासी मारे गए। कुछ ने भागकर जान बचायी लेकिन जोरिया तथा उसके साथी नेता रूपा तथा गललिया को अंग्रेज नहीं पकड़ पाये। अंग्रेज भलीभाँति जानते थे कि जब तक इन तीनों को खासकर जोरिया को नही पकड़ा जाता तब तक विद्रोह को नहीं कुचला जा सकता। छल-बल का सहारा लेकर अंतत: तीनों को गिरफ्तार किया गया। इन पर राजद्रोह का मुकदमा चलाकर तीनों को फाँसी पर लटकाया गया।"[10]

'मरंग गोड़ा नीलकंठ हुआ' उपन्यास में झारखंड के सिंग दिशुम के आदिवासियों द्वारा चलाए गये स्वतंत्रता आंदोलन को उजागर किया गया है। यह आंदोलन डबरू मानकी, गोनो हो, पोटो, नारा, बेराई, पंडुआ, सुरदन, टोपाये, हाडुवाकोमो, पांडुवा, कोचे हो आदि आदिवासी नायकों के नेतृत्व में चलाया गया था। हो आदिवासियों के स्वतंत्रता आंदोलन के मूल में - आदिवासी भूमि पर अंग्रेज और रियासती राजाओं द्वारा कब्जा किया जाना, आदिवासियों का वनों से पुश्तै नी हक खत्म कर देना, राज द्वारा भूमि पर लगान लगाये जाना तथा आदिवासी औरतों के साथ बंदुक की नोक पर की गयी बदसलूकी जैसे कई कारण थे। सेंरेंगेटिया घाटी में किया गया घमासान युद्ध स्वाभिमानी आदिवासियों द्वारा चलाये गये स्वतंत्रता आंदोलन की महत्वपूर्ण कड़ी के रूप में जाना जाता है। सेंरेंगेटिया घाटी की गुफाओं से निकलकर छापामार पद्धति से आदिवासी तीर धनुष, टोंगा, अ:सर, हुतुरला जैसे पारंपारिक अस्त्रों से बहादुरी के साथ लड़े थे। इसमें कई लड़ाकुओं को वीरगति प्राप्त हुई थी। कइयों की गिरफ्तारियाँ हुई थीं। कई लड़ाकु हँसते-हँसते फाँसी पर लटक गये पर सिंग दिशुम की आज़ादी को बरकरार रखने की पूरी कोशिश हो आदिवासियों ने की। दक्षिण कोल्हन के बड़पीड़ पर आक्रमण करके लौट रही अंग्रेजी सेना जब मोगरा नदी पार कर रही थी तब झाड़ियों में छिपकर हो योद्धाओं ने उन पर तीरों की बौछारें कर दी। इसमें कई अंग्रेज सैनिक मारे गये। इससे तिलमिलाकर सरकार ने अत्याधुनिक शस्त्रों से लौस फौजियों की विशाल टुकड़ियों को भेजकर आदिवासियों पर अत्यंत सख्ती से कहर बरपाया था। लेखिका हो आदिवासियों की बहादुरी, स्वाधीनता और देशप्रेम की भावना को व्यक्त करते हुए लिखती है, "हमारे पूर्वजों ने अंग्रेजों की गुलामी नहीं स्वीकारी। अंग्रेजों का खजाना भरने के लिए राजाओं तथा जमींदारों को लगान देने से इनकार करते रहे। उनका प्रभुत्व स्वीकार नहीं करना चाहा। जो भी उन पर अधिपत्य जमाने आया, जो भी उनसे लगान मांगने आया उन सभी से वे लड़े....हमारा हौसला पस्त करने के लिए, हमें गुलाम बनाने के लिए अंग्रेज सरकार फौज पर फौज भेजती रही। आसपास के राजाओं तथा उनके जमींदारों (सामंत सरदारों) को अपने अधीन करके हमारे खिलाफ उनकी मदद करती रही या उन राजाओं के कहने पर भी सैन्ये शक्ति के प्रयोग से हमें परास्त करना चाहा मगर हमारे पुरखे उनसे लड़ते रहे....लड़ते रहे...."[11]

राकेशकुमार सिंह द्वारा लिखा 'हुल पहाडिया' उपन्यास आदि विद्रोही शहीद तिलका माझी पर लिखी समरगाथा है। तिलका माझी ने जुलमी व अनाचारी ब्रिटिश हुकूमत के साम्राज्यवादी नीतियों के विरोध में राजमहल की पहाडियों में बगावत का नगाडा बजाकर भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन की शुरूआत की थी। तिलका बचपन से ही स्वाभिमानी, वीरप्रवृत्ति व साहसी थे। तिलका ने बचपन में अपने पिता सुगना से ये कथाएँ सुनी थीं कि सदियों से राजमहल की जंगल तराई में पहाडिया आबाद थे। जंगल तराई में पहाडियों का ही राज था। तेलीयागढ़ी का किला पहाडियों के सत्ता का प्रतीक था। परंतु बाहर से आकर मोगल, मराठे,

पठानों ने पहाडियों को परेशान किया था। इसके बाद अब किस तरह विदेशी फिरंगी आकर जंगल छीनने की कोशिशों में लगे हैं, सुगना और तिलका की बातों से पता चलता है कि अफगान शेरशहा के बेटे जलाल खाँ ने तेलीयागढ़ी पर अफगानी झंडा फहराया था। 1535 में यह घटना हुई थी। बहिरागतों ने पहाडियों को खूब लूटा, उनका शोषण किया। 1639-1660 के बीच राजमहल की पहाडियों तक आते-आते फिरंगी दीकू सेंध लगाने में सफल हुए। ग्रेब्रियल ब्राउटन शुजा से व्यापार का अनुमतिपत्र प्राप्त करने में सफल रहा।

व्यापार की अनुमति वाले पत्र के जरीए अंग्रेज इलाके में फैलने में सफल रहे। उन्होंने राजमहल में छोटा अंग्रेज व्यापारी केंद्र भी स्थापित किया। उधवानाला के युद्ध से तो मानो ईस्ट इंडिया कंपनी को जंगल तराई में दोहन का अधिकार ही मिल गया। अंग्रेजों ने जंगल तराई में सस्ते श्रम का दोहन, भूगर्भ में दबी खनिज सम्पदा, जंगल तराई में बसी जमींदारियों से राजस्व की अनाधिकार वसूली जैसी चीजों को अंजाम पर पहुँचाया। यहीं नहीं अब तेलियागढ़ी पर फिरंगियों की पताका लहराने लगी। तिलका बचपन से सुनी तेलीयागढ़ी की करूण-कथा को नहीं भूला। तिलका को सीधे-सीधे अंग्रेजों से बगावत करने के लिए 1768 के दौर में पडे अकाल के पूर्व की अंग्रेजों द्वारा जंगल तराई के पहाडियों से मात्र चवन्नी के दाम में छह मन चावल खरीदने और इसी चावल को अकाल में चवन्नी के दाम में मात्र एक सेर बेचने की घटना ने बाध्य किया। इसी गुस्से में तिलका ने अपने साथियों को एकजुट किया। और ब्रिटिशों के विरोध में बगावत का बिगुल बजाया। और अपने साथियों के साथ मिलकर अंग्रेजों के राजस्व वसूली के खजाने को लूटा। इस घटना से "ईस्ट इंडिया कंपनी के अधिकारी सन्न थे। गजब घटित हुआ था। कंपनी का खजाना लुटा गया दिन दहाडे जंगल तराई के क्षेत्र में पहली बार कंपनी के खजाने की लूट हुई थी। कंपनी की सुरक्षा-व्यवस्था पर ही कालिख नहीं पूती थी वरन् जंगल तराई पर कंपनी के स्थापित होते दबदबे की नींव को कमजोर होने का संकेत हो सकती थी खजाने की यह लूट"[12] अब कंपनी का कहर दिन-ब-दिन जंगल तराई में बढ़ता ही जा रहा था। कंपनी ने इस लूट के पीछे किसका हाथ है, इसके लिए जोरों पर जाँच-पडताल शुरू की। कंपनी नहीं चाहती थी कि इस तरह उन्हें कोई ललकारे। अब कंपनी ने इलाके के सभी परगनों पर लगान देना अनिवार्य कर दिया। असल में पहाडियों का मानना था कि वे किसी की रैयत नहीं हैं। वे किसी राजा-कंपनी की माजगुजारी नहीं भरेंगे। उनका यह भी मानना था कि बाघ, भालू, हाथी, अजगर, सबसे लडे थे पहाडिया। जंगलों को काटकर साफ करने में न जाने कितनी पीढियाँ बीत गई तब जाकर पहाडियों के गाँव बसे थे। उन्होंने अपने ही दम पर जमीन बनाई थी तो दूसरों को लगान क्यों दें। जंगल तराई के तमाम पहाडिया परगना माझियों ने तय किया कि किसी भी हालत में कंपनी को लगान नहीं दिया जाएगा। उपन्यास का लगन सरदार कहता है, "हम सबको मरना है एक दिन। आगे पीछे सब जाएँगे, लेकिन बाल-बच्चों के सिर पर लगान का भूत बोझ कर क्यों मरें पहाडिया?"[13] ब्रिटिशों ने और एक चाल चलते हुए जंगल तराई को दक्षिणी-पश्चिम सीमांत का नाम देकर जंगल तराई में देशी व्यापारियों, मित्रों और सूदखोर महाजनों को बसाना प्रारंभ किया और इस तरह जंगल तराई में आदिवासियों को ही अल्पसंख्यक बनाने की कोशिशें करते हुए आदिवासियों व गैर-आदिवासियों के बीच कंपनी दलालों-बिचौलियों को स्थापित करने की नीति चली। यहीं नहीं जंगल तराई के गाँवों पर नियंत्रण रखने के हेतु पुलिस थाने और चौकियाँ भी बनायी गयीं। कुल मिलाकर जंगल तराई में विदेशियों ने मूलनिवासियों का जीना मुश्किल कर दिया था इससे तंग आकर तिलका ने फैसला किया कि "हम जिएँ या मरें, कोई बात नहीं। मर गए तो अपने पुरखों के बीच गर्व के साथ जा बैठेंगे। जी, बच गए तो माथ ऊँचा कर के जिएँगे पहाडिया....अब विजय या वीरगति।"14 इस तरह का निर्णय लेते हुए तिलका ने जंगल तराई में तमाम मूलनिवासी जातियों को एकजुट करते हुए 1771 से 1784 तक गुरील्ला तरीके से युद्ध लडते हुए अंग्रेज शासक, सामंतों और महाजनों का कडा प्रतिरोध किया। कुल मिलाकर यह हुल ही आगे चलकर भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन को व्यापक आयामों तक पहुँचाने वाला साबित हुआ।

संदर्भ

1. केदार प्रसाद मीणा, आदिवासी विद्रोह–परंपरा और साहित्यिक अभिव्ययक्ति की समस्याएँ, अनुज्ञा प्रकाशन, दिल्ली, संस्क रण, 2015, अनुक्रम से

2. मधुकर सिंह, बाजत अनहद ढोल, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली द्वितीय संस्करण, 2005, पृ.88

3.वही, पृ.82

4.वही, पृ.92

5.वही, पृ.113

6.हरिराम मीणा, धूणी तपे तीर, साहित्यर उपक्रम, हरियाणा, जनवरी, 2008, पृ.118

7.वही, पृ.309

8.वही, पृ.340

9.वही, पृ.366

10.वही, पृ.128

11.महुआ माजी, मरंग गोड़ा नीलकंठ हुआ, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्लीण, प्रथम संस्करण, 2012, पृ.241

12.राकेशकुमार सिंह, हुल पहाडिया, सामायिक बुक्स्, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2012, पृ.36

13.वही, पृ.125

14.वही, पृ.314

****